वैदिक संस्कृतिको श्रमण-संस्कृतिकी देन

[दिन और रातकी तरह अच्छाई और बुराईका, पुण्य और पापका, विचार-विभिन्नताका साथ सदासे ही रहा है। इतिहासके पन्नोंसे जहां यह स्पष्ट होता है कि श्रमणसंस्कृतिका अस्तित्व भारतमें प्राचीनतम कालसे है वहां यह भी स्पष्ट होता है कि उसका विरोध भी बहुत पुराना है। पुराणोंके अनुसार भगवान् ऋषभदेवके समयसे ही उनके विरोधी भी उत्पन्न हो गये थे। इतने दीर्घकालसे साथ-साथ रहनेके कारण दोनोंने ही एक-दूसरेसे बहुत कुछ लिया-दिया है। श्रमण-संस्कृतिने श्रमणेतर-संस्कृतिको जो कुछ दिया उसमें प्रमुख हैं अहिंसा, मूर्तिपूजा, अध्यात्म आदि।]

जिस वर्ग, समाज या राष्ट्रकी कला, साहित्य, रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान, पहनाव-ओढ़ाव, धर्म-नीति, व्रत-पर्व आदि प्रवृत्तियां जिस विचार और आचारसे अनुप्राणित होती हैं या की जाती हैं वे उस वर्ग, समाज या राष्ट्रके उस विचार और आचार मूलक मानी जाती हैं। ऐसी प्रवृत्तियां ही संस्कृति कही जाती हैं।

भारत एक विशाल देश है। इसके भिन्न-भिन्न भागोंमें सदासे ही भिन्न-भिन्न विचार और आचार रहे हैं तथा आज भी ऐसा ही है। इसलिए यहां कभी एक, व्यापक और सर्वग्राह्य संस्कृति रही हो, यह संभव नहीं और न ज्ञात ही है। हाँ, इतना अवश्य जान पड़ता है कि दूर अतीतमें दो संस्कृतियोंका प्राधान्य अवश्य रहा है। ये दो संस्कृतियां हैं–१ वैदिक और–२ अवैदिक। वैदिक संस्कृतिका आधार वेदानुसारी आचार-विचार है और अवैदिक संस्कृतिका मूल अवेदानुसारी अर्थात् पुरुष-विशेषका अनुभवाश्रित आचार-विचार है। ये दोनों संस्कृतियां जहाँ परस्परमें संघर्षशील रही हैं वहाँ वे परस्पर प्रभावित भी होती रही हैं।

वैदिक (ब्राह्मण) संस्कृति

१. वैदिक (ब्राह्मण) संस्कृतिमें वेदको ही सर्वोपरि मानकर वेदानुयायियोंकी सारी प्रवृत्तियां तदनुसारी रही हैं। इस संस्कृतिमें वेदप्रतिपादित यज्ञोंका प्राधान्य रहा है और उनमें अनेक प्रकारकी हिंसाको विधेय स्वीकार किया गया है। **'याज्ञिकी हिंसा हिंसा न भवति'** कहकर उस हिंसाका विधान करके उसे खुल्लम-खुल्ला छूट दे दी गयी है। उसका परिणाम यह हुआ कि उत्तर कालमें मांस-भक्षण, मद्यपान और मैथुन-सेवन जैसी निन्द्य प्रवृत्तियां भी आ घुसीं और उनमें दोषाभावका प्रतिपादन किया गया—

'न मांस-भक्षणे दोषो, न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां, निवृत्तिस्तु महाफला॥

—मनुस्मृति।

इतना ही नहीं, उन्हें जीवोंकी प्रवृत्ति (स्वभाव) बतलाकर उन्हें स्वच्छन्द छोड़ दिया गया है—उनपर कोई नियन्त्रण नहीं रखा। फलतः उनसे निवृत्ति होना दुसाध्य बतलाया है। सोमयज्ञमें एक वर्षकी लाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गायके हवनका विधान, अन्य यज्ञोंमें श्वेत बकरेकी बलिका निर्देश जैसे सैकड़ों हिंसा-प्रतिपादक अनुष्ठानादेश वेदविहित हैं—'**एक हायन्या अरुणया गवा सोमं क्रीणाति,**' '**श्वेतमजमालभेत**' आदि।

२. वैदिक संस्कृति मीमांसक विचार और अनुष्ठान प्रधान है। अतएव आरम्भमें इसमें ईश्वरका कोई स्थान न था। क्रिया ही अनुष्ठेय एवं उपास्य थी। किसी पुरुषविशेषको उपास्य या ईश्वर मानना इस संस्कृतिके लिए इष्ट नहीं रहा, क्योंकि उसे माननेपर वेदकी अपौरुषेयतापर आंच आती और खतरेमें, पड़ती है। इसीलिए वैदिक मन्त्रोंमें केवल इन्द्र, वरुण जैसे देवताओंका ही आह्वान हैं। राम, कृष्ण, शिव विष्णु जैसे पुरुषावतारी ईश्वरकी उपासना इस संस्कृतिमें आरम्भमें नहीं रही। वह तो उत्तर कालमें आयी और उनके लिए मन्दिर बने तथा तीर्थोंका स्थापन हुआ।

३. जहाँ तक ऐतिहासिकों और समीक्षकोंका विचार है यह संस्कृति क्रियाप्रधान है, अध्यात्म-प्रधान नहीं। वेदोंमें आत्माका विवेचन अनुपलब्ध है। वह उपनिषदोंके माध्यमसे इस संस्कृतिमें पीछे आया है। माण्डूक्य उपनिषद्में कहा है कि विद्या दो प्रकारकी है—१. परा और २. अपरा। परा विद्या आत्म-विद्या है और अपरा विद्या कर्म-काण्ड है। छान्दोग्योपनिषद्में आत्म-विद्याकी प्राप्ति क्षत्रियोंसे और क्रियाकाण्डका ज्ञान ब्राह्मणोंसे बतलाया गया है। इससे प्रतीत होता है कि उस सुदूर कालमें आत्म-विद्या इस संस्कृतिमें नहीं थी।

४. वेदोंमें यज्ञ करनेसे स्वर्गप्राप्तिका निर्देश है, मोक्ष या निःश्रेयस की कोई चर्चा नहीं है। उसका प्रतिपादन इस संस्कृतिमें पीछे समाविष्ट हुआ है।

५. वेदोंमें तप, त्याग, ध्यान, संयम और शम जैसे आध्यात्मिक साधनोंको कोई स्थान प्राप्त नहीं है। तत्त्वज्ञानका भी प्रतिपादन नहीं है। उनमें केवल '**यजेत् स्वर्गकामः**' जैसे निर्देशों द्वारा स्वर्गकामीके लिए यज्ञका ही विधान है।

अवैदिक (श्रमण) संस्कृति

इसके विपरीत अवैदिक (श्रमण) संस्कृतिमें, जो पुरुष-विशेषके अनुभवपर आधृत है और जो श्रमण-संस्कृति या तीर्थंकर-संस्कृतिके नामसे जानी-पहचानी जाती है, वे सभी (ईश्वर, निःश्रेयस, तप, ध्यान, संयम, शम आदि) बातें पायी जाती हैं जो वैदिक संस्कृतिमें आरम्भमें नहीं थीं। यद्यपि जैन और बौद्ध दोनोंकी संस्कृतिको अवैदिक अर्थात् श्रमण-संस्कृति कहा जाता है। पर यथार्थमें आर्हत संस्कृति ही अवैदिक (श्रमण) संस्कृति है, क्योंकि उसे समण—सम + उपदेशक अर्हत्के अनुभव—केवलज्ञानमूलक माना गया है। दूसरे, बुद्ध भी आरम्भमें तीर्थंकर पार्श्वनाथकी परम्परामें हुए निर्ग्रन्थ मुनि पिहितास्रवसे दीक्षित हुए थे और वर्षों तक तदनुसार दया, समाधि, केशलुंचन, अनशनादि तप आदि प्रवृत्तियोंका आचरण करते रहे थे। बादको निर्ग्रन्थ-तप की क्लिष्टताको सहन न कर सकनेके कारण उन्होंने निर्ग्रन्थ-मार्गको छोड़ दिया और मध्यम मार्ग अपना लिया। फिर भी दया, समाधि आदि कुशल कर्मोंको नहीं त्यागा और बोधि प्राप्त हो जानेके बाद उन्होंने भी निर्ग्रन्थ संस्कृतिके दया, समाधि आदिका उपदेश दिया तथा वैदिक क्रियाकाण्ड-को बिना आत्मज्ञान (तत्त्वज्ञान) के थोथा बतलाया। इसीलिए उनकी विचारधारा और आचरण वैदिक संस्कृतिके अनुकूल न होने और केवलज्ञानमूलक श्रमण-संस्कृतिके कुछ अनुकूल होनेसे उसे श्रमण-संस्कृति-में समाहित कर लिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. विदित है कि श्रमणसंस्कृतिमें हिंसाको कहीं स्थान नहीं है। अहिंसाकी ही सर्वत्र प्रतिष्ठा है। न केवल क्रियामें, अपितु वाणी और मानसमें भी अहिंसाकी अनिवार्यता प्रतिपादित है। आचार्य समन्तभद्र-ने इसीसे अहिंसाको जगत् विदित **'परम ब्रह्म'** निरूपित किया है—**'अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमम्,'** इस अहिंसाका सर्वप्रथम विचार और आचार युगके आदि में ऋषभदेवके द्वारा प्रकट हुआ। वही अहिंसाका विचार और आचार परम्परया मध्यवर्ती तीर्थंकरों द्वारा नेमिनाथको प्राप्त हुआ। उनसे पार्श्व-नाथको और पार्श्वनाथसे तीर्थंकर महावीरको मिला। इसीसे उनके शासनको स्वामी समन्तभद्रने दया, समाधि, दम और त्यागसे ओतप्रोत बतलाया है—**'दया-दम-त्याग-समाधिनिष्ठं।**[1] इससे यह सहजमें समझा जा सकता है कि वैदिक संस्कृतिमें अहिंसाकी उपलब्धि श्रमण-संस्कृतिकी देन है, अहिंसामूलक आचार-विचार उसीका है।

२. श्रमणसंस्कृतिकी दूसरी देन यह है कि उसने वेदके स्थानमें पुरुषविशेषका महत्त्व स्थापित किया और उसके अनुभवको प्रतिष्ठित किया। उसने बतलाया कि पुरुषविशेष अकलंक अर्थात् ईश्वर हो सकता है—**दोषावरणयोर्हानिर्निश्शेषास्त्यतिशायनात्। क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः॥**[2] अतएव इस संस्कृति-में पुरुषविशेषका महत्त्व बढ़ाया गया और उन पुरुषविशेषों—तीर्थंकरोंकी पूजा-उपासना प्रचलित की गयी तथा उनकी उपासनार्थ उपासनामन्दिरों एवं तीर्थोंका निर्माण हुआ। इसका इतना प्रभाव पड़ा कि अपौरुषेय वेदके अनुयायियोंमें ही कितने ही वेदको ईश्वरकृत मानने लगे और राम, कृष्ण, शिव, विष्णु जैसे पुरुषोंको ईश्वरका अवतार स्वीकार कर उनकी उपासना करने लगे। फलतः वैदिक संस्कृतिमें भी उनकी उपासनाके लिए अनेकों सुन्दर मन्दिरोंका निर्माण हुआ तथा तीर्थ भी बने।

३. निःसन्देह वैदिक संस्कृति जहाँ क्रियाप्रधान है, तत्त्वज्ञान उसके लिए गौण है वहाँ श्रमण-संस्कृति तत्त्वज्ञानप्रधान है और क्रिया उसके लिए गौण है। यह भी प्रकट है कि यह संस्कृति क्षत्रियोंकी संस्कृति है, जो उनकी आत्मविद्यासे निसृत हुई। सभी तीर्थङ्कर क्षत्रिय थे। अतः वैदिक संस्कृतिमें जो आत्मविद्याका विचार उपनिषदोंके रूपमें आया और जिसने वेदान्त (वेदोंके अन्त) का प्रचार किया वह निश्चय ही श्रमण (तीर्थंकर) संस्कृतिका स्पष्ट प्रभाव है। और इसलिए वैदिक संस्कृतिको आत्मविद्याकी देन भी श्रमण संस्कृतिकी विशिष्ट एवं अनुपम देन है।

४. वेदोंमें स्वर्गसे उत्तम अन्य स्थान नहीं है। अतः वैदिक संस्कृतिमें यज्ञादि करनेवालेको स्वर्ग-प्राप्तिका निर्देश है। इसके विपरीत श्रमण संस्कृतिमें स्वर्गको सुखका सर्वोच्च और शाश्वत स्थान न मानकर मोक्षको माना गया है। स्वर्ग एक प्रकारका संसार ही है, जहाँसे मनुष्यको वापिस आना पड़ता हैं। परन्तु मोक्ष शाश्वत और स्वाभाविक सुखका स्थान है। उसे प्राप्त कर लेनेपर मनुष्य मुक्तसिद्ध परमात्मा हो जाता है और वहाँसे उसे लौटकर आना नहीं पड़ता। इस प्रकार मोक्ष या निःश्रेयसकी मान्यता श्रमण संस्कृतिकी है, जिसे उत्तरकालमें वैदिक संस्कृतिमें भी अपना लिया गया है।

५. श्रमणसंस्कृतिमें आत्माको उपादेय और शरीर, इन्द्रिय तथा भोगोंको हेय बतलाया गया है। संसार-बन्धनसे मुक्ति पानेके लिए दया (अहिंसा), दम (इन्द्रिय-निग्रह), त्याग (अपरिग्रह) और समाधि

---

१. युक्त्यनु० का० ६। २. देवागम का० ४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ध्यान, योग) का निरूपण इस संस्कृतिमें किया गया है। ये सब आध्यात्मिक गुण हैं। प्रमाण और नयसे तत्त्व (आत्मा) का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेका प्रतिपादन भी आरम्भसे इसी संस्कृतिमें है—'दया-दम-त्याग-समाधिनिष्ठं नय-प्रमाणप्रकृताञ्जसार्थम्[1]।' इससे अवगत होता है कि अहिंसा, इन्द्रियनिग्रह, अपरिग्रह, समाधि और तत्त्वज्ञान, जो वैदिक संस्कृतिमें आरम्भमें नहीं थे और न वेदोंमें प्रतिपादित थे, बादमें वे उसमें आदृत हुए हैं, श्रमणसंस्कृतिकी वैदिक संस्कृतिको असाधारण देन है।

यदि दोनों संस्कृतियोंके मूलका और गहराईसे अन्वेषण किया जाये तो ऐसे पर्याप्त तथ्य उपलब्ध होंगे, जो यह सिद्ध करनेमें सक्षम होंगे कि क्या किसकी देन है—किसने किसको क्या दिया-लिया है।

१. युक्त्यनुशा० का० ४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org